24 परीक्षाएँ : विश्वसनीयता और पवित्रता बहाल करने की आवश्यकता

आर. एस. कृष्णा



मेरा यह मानना है कि भारत के विभिन्न स्कूलों, परीक्षा बोर्डों और विषयों में मूल्यांकन मूलतः एक औपचारिकता भर होते हैं। उनकी प्रमुख चिन्ता छात्रों का बेहतर प्रतिशत के साथ उत्तीर्ण होना सुनिश्चित करना प्रतीत होती है। दूसरे, विषय की समझ और कौशलों के परीक्षण की आवश्यकता के बजाय मूल्यांकन के सर्वोपरि मानदण्ड, परीक्षाओं के तनाव और डर को कम से कम करने की मनोवैज्ञानिक चिन्ताओं से निर्धारित होते प्रतीत होते हैं। यहाँ मूल्यांकन से मेरा तात्पर्य लघु–परीक्षा/परीक्षा का प्रश्नपत्र तैयार करने की और उसका आकलन करने की, जिसमें या तो अंक या ग्रेड (स्तर) दिए जाते हैं, दोनों प्रक्रियाओं से है।

हालाँकि उपरोक्त तस्वीर सभी विषय–क्षेत्रों की हो सकती है, लेकिन यह दृश्य तब और भी अधिक निराशाजनक दिखाई देता है जब बात सामाजिक विज्ञान की आती है जिसमें इतिहास, भूगोल, राजनीति विज्ञान (या सिर्फ राजनीति) और अर्थशास्त्र के विषय शामिल होते हैं। ऐसा लगता है कि ये विषय, खासकर इतिहास और राजनीति, लगातार ''अप्रासंगिक'', ''रटने पर केन्द्रित'', ''एक–आयामी'' होने की कटु आलोचनाएँ झेलते रहने के कारण, परीक्षाओं को ''सरल'' और ''अधिक अंक ला सकने'' वाली बनाकर अपना उद्धार करने की कोशिश करते हैं। आजकल जब इतने अधिक छात्र 90 प्रतिशत से ऊपर अंक और ए ग्रेड प्राप्त करते हैं, तो वह अपने आप में एक कहानी कहता है। पर छात्रों की इतिहास या राजनीति की समझ का इससे भी अधिक सच्चा संकेत हमारे युवाओं – समाज, तथा राजनीति के प्रति उदासीन, और नागरिकता के गुणों से रहित – के सामाजिक और राजनैतिक आचरणों से मिलता है। इस विरोधाभास के बारे में कुछ और कहने की जरूरत नहीं है, यह वास्तव में एक त्रासदी है[1]।

इस लेख में, मैं तीन शैक्षणिक बोर्डों, तमिलनाडु मैट्रिकुलेशन बोर्ड (टीएनएमबी), सेन्ट्रल बोर्ड ऑफ सैकण्ड्री एग्ज़ामिनेशन्स (सीबीएसई) और कौंसिल फॉर इण्डियन स्कूल सर्टिफिकेट एग्ज़ामिनेशन्स (सीआईसीएसई या संक्षेप में आईसीएसई), द्वारा संचालित सार्वजनिक परीक्षाओं में प्रयोग की जाने वाली मूल्यांकन प्रक्रियाओं के बारे में कुछ बड़े प्रश्न उठाने की कोशिश करूँगा। हालाँकि मेरे द्वारा उठाए जाने वाले कई मुद्दे और प्रश्न सामाजिक विज्ञान के सभी विषयों पर लागू हो सकते हैं, किन्तु इतिहास और राजनीति पढ़ाने के मेरे अनुभव को देखते हुए, मेरी आलोचना मुख्य रूप से इन्हीं विषयों तक सीमित रहेगी।

मेरी दृष्टि में मूल्यांकन, परीक्षाएँ, परीक्षण, आकलन ...आदि एक बड़ी तस्वीर का हिस्सा हैं, जिसे पाठ्यचर्या परिदृश्य कहा जा सकता है, और जिसके सन्दर्भ में हमें पाठ्यपुस्तकों और शिक्षण के विभिन्न पहलुओं पर गौर करने की, और लघु–परीक्षाओं तथा परीक्षाओं में पूछे जाने वाले प्रश्नों की समीक्षा करने की आवश्यकता है। शायद सीबीएसई को एक हद तक अपवाद भी मान लें, तो टीएनएमबी और आईसीएसई द्वारा आयोजित की जाने वाली परीक्षाएँ हमारे स्कूलों में सामाजिक विज्ञान की पढ़ाई के तरीकों की काफी दयनीय और हास्यास्पद स्थिति को प्रतिबिम्बित करती हैं। विडम्बना यह है कि इतिहास और राजनीति की पाठ्यपुस्तकें (जिनका एकमात्र अपवाद एनसीईआरटी की पुस्तकें हैं जो सीबीएसई से सम्बद्ध स्कूलों के लिए नियत रहती हैं, किन्तु इसके बावजूद सीबीएसई को निर्दोष नहीं माना जा सकता, जैसा कि मैं बाद में उल्लेख करूँगा) और उनके शिक्षण के तरीके, दोनों ही जैसे बीते हुए युग में फंसकर रह गए हैं। मेरा मानना है कि ये ही बोर्ड परीक्षाओं के घिसे–पिटे स्वरूप और जड़ता के लिए जिम्मेदार हैं। उदाहरण के लिए, यदि हम टीएनएमबी की कक्षा 10 की इतिहास और नागरिक शास्त्र की परीक्षाओं की बात करें तो मुश्किल से ही कोई ऐसा प्रश्न (वस्तुनिष्ठ, ''शीर्षक प्रश्न'', संक्षिप्त उत्तर वाला या निबन्धात्मक प्रश्न) होगा जो परीक्षा के तीनों आर, अर्थात रीड (पढ़ना), रिकॉल (स्मरण करना) और राइट (लिखना), वाले प्रतिरूप पर आधारित न हो। हालाँकि टीएनएमबी परीक्षा का घोषित ब्ल्यू प्रिन्ट यह दावा करता है कि पूछे जाने वाले 41 प्रश्न ज्ञान, उसके प्रयोग, कौशल और समझ पर आधारित हैं, सिर्फ एक भोला व्यक्ति ही उनकी बातों पर विश्वास करेगा। अगर पिछले पाँच वर्षों के प्रश्नपत्रों को देखें तो एक भी ऐसा प्रश्न सामने नहीं आता जो किसी छात्र से कुछ विचार, वास्तविक विश्लेषण या मौलिकता की माँग करता हो।

इसी प्रकार, आईसीएसई भी किसी तरह से अलग नहीं है। जब कोई इसके इतिहास और नागरिक शास्त्र के करीब एक दशक के प्रश्न पत्रों पर गौर करे तो, अगर उसे धक्का न भी लगे, वह अचम्भित अवश्य होगा कि यह बोर्ड, जो अपनी एक विशिष्ट पहचान (ब्राण्ड इक्विटी) होने का दावा करता है जिसके कारण देशभर में कुछ सबसे कुलीन, विशिष्ट, सराहे गए और जाने–माने स्कूल उससे सम्बद्ध हैं, भी टीएनएमबी के समान ही हास्यास्पद उदाहरण पेश करता है। क्योंकि इसके प्रश्न पत्रों का स्वरूप भी करीब–करीब

वैसा ही रहता है। प्रश्न भी कई बार वैसे ही होते हैं और परीक्षा का जोर मूलतः छात्रों की रटने की क्षमता का परीक्षण करने पर दिखता हैं[2]।

अब सीबीएसई की बात करें, तो यहाँ परिदृश्य थोड़ा बदला हुआ दिखता है। हमें यहाँ सिर्फ याद करने और रटे हुए को लिख देने से हटकर छात्रों की समझ और उसके प्रयोग करने की क्षमता के परीक्षण का कुछ प्रयास जरूर दिखाई देता है। यद्यपि, पिछले अकादमिक वर्ष से, कपिल सिब्बल के कक्षा 10 की अन्तिम परीक्षा को स्वैच्छिक बनाने जैसे उदारवादी कदम से प्रेरित होकर, सीबीएसई ने कुछ परिवर्तन किए हैं। लेकिन उससे पहले के चार वर्षों के प्रश्न पत्रों का निरीक्षण करें तो सीबीएसई महत्वपूर्ण दिनांकों, नामों और घटनाओं को स्मृति से दोहराने के तरीके से छुटकारा पाने में नाकाम रहा है। दूसरी (और हकीकत को अधिक प्रगट करने वाली) बात है कि सीबीएसई में अंक देने की पद्धति यह सुनिश्चित करती है कि करीब 80 प्रतिशत प्रश्न ''सरल''और ''औसत'' के बीच होना चाहिए; ''कठिन'' प्रश्न 20 प्रतिशत से अधिक नहीं होना चाहिए![3] तीसरी बात है कि सीबीएसई द्वारा हाल ही में लागू किए गए समग्र और सतत मूल्यांकन (सीसीई) में 60 प्रतिशत भारिता (वेटेज़) सामाजिक विज्ञान के सभी विषयों को मिला कर दिया जाता है, जिसे वे योगात्मक मूल्यांकन कहते हैं। योगात्मक मूल्यांकन अन्तिम बोर्ड परीक्षाओं की भाँति होते हैं। शेष भाग को निर्माणात्मक मूल्यांकन कहा जाता है जिसमें लघु–परीक्षाएँ, विभिन्न प्रोजेक्ट, नियत कार्य, गृह कार्य, कक्षा कार्य आदि शामिल रहते हैं जिन्हें दैनिक, साप्ताहिक, पाक्षिक और मासिक आधार पर किया जाना रहता है[4]। देखने में ये प्रगतिशील और विश्वसनीय गतिविधियाँ लगती हैं। किन्तु मेरा तर्क है कि ये अध्ययन को समृद्ध बनाने की दृष्टि से नहीं उपजतीं बल्कि मोटे तौर पर इनका उद्देश्य छात्रों का तनाव दूर करना और परीक्षाओं के डर और दबाव को हटाना होता है[5]। (यह अलग बात है कि इस प्रक्रिया में शिक्षक अधिक तनाव में रहते हैं और उनका बहुत सा बहुमूल्य समय विभिन्न प्रकार के आँकड़ों को तैयार करने, उन्हें दर्ज करने और इकट्ठा करने में निकल जाता है)[6]।

पर छात्रों को तनाव से मुक्त करने और उनके मन से परीक्षा का डर निकालने की चिन्ताएँ सीखने के साथ कतई न्याय नहीं कर पातीं। विषय की ज्ञानमीमांसा की जटिलता और गहनता से समझौता करके, हम न केवल परीक्षाओं को मजाक बना देते हैं, बल्कि स्वयं विषय, सीखने और स्कूली पढ़ाई को भी मजाक बना देते हैं। अनेक लोगों द्वारा समवेत स्वर में परीक्षाओं की भयावह तस्वीर पेश किए जाने से, यदि दूसरे विषयों को नहीं, तो कम से कम इतिहास और राजनीति जैसे विषयों की स्वाभाविक चुनौती, आकर्षण, सुन्दरता और प्रतिष्ठा को क्षति पहुँची है।

एक स्तर पर मैं यह भी कहना चाहता हूँ कि सीबीएसई की परीक्षाओं के स्वरूप ने इतिहास और राजनीति विषयों पर सर्वाधिक कल्पनाशील और विचारवान पाठ्यपुस्तकों के साथ कतई न्याय नहीं किया है। एनसीईआरटी की इतिहास और राजनीति की पाठ्यपुस्तकों का उद्देश्य छात्रों को इस बात की प्रतीति कराने में मदद करना है कि इतिहास सिर्फ दिनांकों, घटनाओं और नामों तक सीमित न रहकर और भी बहुत कुछ होता है। ये पुस्तकें अपने दृष्टिकोण में कई परतों वाली और विषय–प्रसंगों (थीम्स) पर अधिक जोर देने वाली हैं। सभी प्रसंगों का स्वरूप अधिक खोजपरक है और उन्हें जानबूझ कर खुला छोड़ा गया है ताकि शिक्षक और छात्र दोनों ही उन पर बहस कर सकें।[7] इसलिए ऐसे मामले में परीक्षाएँ अधिक कल्पनाशीलता और गहराई की माँग करती हैं, कि वे ऐसी हों जो छात्रों को अन्तर्दृष्टि, ज्ञान और गहरी समझ को दर्शाने वाले उत्तर देने के लिए उकसाएँ। पर अफसोस! जब कोई सीबीएसई के प्रश्न पत्रों की एनसीईआरटी की पाठ्यपुस्तकों से तुलना करता है, तो सीबीसीई की परीक्षाओं का स्वरूप एकदम साधारण और नीरस दिखता है।[8] दूसरी तरफ़, अगर हम आईसीएसई या टीएनएमबी[9] द्वारा निर्धारित किन्ही भी पाठ्यपुस्तकों को देखें, तो किसी को इस बात के लिए माफ किया जा सकता है अगर उसे ये पाठ्यपुस्तकें कुँजियों (गाईडबुक) की तरह दिखाई देती हों!! सभी अध्यायों को साफ–सुथरे कारणों, विवरणों और निष्कर्षों के प्रतिमान के अनुसार वर्गीकृत किया गया है। इनमें कैसे और क्यों पर बहुत कम ध्यान दिया गया है, और जब इन्हें प्रस्तुत भी किया गया है तो दिए गए तर्क साफ–सुथरे ढंग से वर्णित, निश्चित और अपनेआप में पूर्ण हैं। इनका उद्देश्य, जैसा मैंने पहले कहा है, मुख्य रूप से इन्हें आसानी से याद करने और इस प्रकार अधिक अंक पाने में मदद करना है।

अन्ततः किसी भी परीक्षा/मूल्यांकन का स्वरूप बदलना दो चीजों पर निर्भर करता है – एक, पाठ्यपुस्तकों में बदलाव और दूसरा तथा अधिक महत्वपूर्ण, शिक्षणपद्धति में बदलाव। एनसीईआरटी ने गुणवत्ता की दृष्टि से बच्चों को इतिहास और राजनीति की अधिक समृद्ध समझ देने के लिए अपना कर्तव्य निभाया है। पर, अन्तिम विश्लेषण में बच्चों की सहायता करने की जिम्मेदारी शिक्षकों की होती है कि वे कक्षा में किस प्रकार से विषय की चर्चा प्रारम्भ करते हैं। जरूरत है इतिहास और राजनीति की गहरी और ठोस समझ रखने वाले शिक्षकों की, जो समाज को उसके भूतकाल के दौरों और वर्तमान में सुनिश्चित रूपों में न देखकर एक प्रक्रिया के रूप में देखते हैं। जिसको समझने में वे उपयुक्त गतिविधियों, कक्षाओं में चर्चा आदि से छात्रों की मदद कर सकते हैं, ताकि वे अर्थशास्त्र,

संस्कृति, राजनीति के परस्पर छूनेवाले पहलुओं की खोज कर सकें और यह भी कि किस तरह ये हमारी पहचान और दृष्टिकोण को निर्धारित करते हैं। दुख की बात यह है कि इस स्थिति में सुधार और नीति परिवर्तन नहीं हो रहे हैं। शहरी भारत में अध्यापन वह व्यवसाय है जिसमें अधिक लोग नहीं जाना चाहते हैं, क्योंकि इसमें सबसे कम वेतन मिलता है, और इसका उपहास उड़ाया जाता है और निन्दा भी की जाती है, इसलिए यह आश्चर्य की बात नहीं है कि शिक्षण में सबसे अच्छी प्रतिभाएँ यहाँ नहीं मिलतीं। परन्तु, ग्रामीण हिस्सों में परिस्थितियाँ भिन्न हैं। वहाँ मुद्दा शिक्षकों की तैयारी में और उन्हें प्रेरित करने में कमी का अधिक है।

> *पर छात्रों को तनाव से मुक्त करने और उनके मन से परीक्षा का डर निकालने की चिन्ताएँ सीखने के साथ कतई न्याय नहीं कर पातीं। विषय की ज्ञानमीमांसा की जटिलता और गहनता से समझौता करके, हम न केवल परीक्षाओं को मजाक बना देते हैं, बल्कि स्वयं विषय, सीखने और स्कूली पढ़ाई को भी मजाक बना देते हैं।*

इस बीच, हमारे पास कुछ ऐसे शिक्षक और स्कूल जरूर हैं, जो परीक्षाओं को अधिक चुनौतीपूर्ण और सार्थक बनाने की कोशिश करते हैं। परन्तु, परीक्षाओं की प्रकृति के अत्यधिक केन्द्रीकृत होने और इनमें दिए जाने वाले ग्रेड या अंकों पर सभी के द्वारा इतना अधिक भरोसा किए जाने के कारण, इस तरह की नवीनता और प्रयोग को दरकिनार कर दिया जाता है। और ध्यान एक बार फिर 'परीक्षा' की तैयारी पर और उच्च प्रतिशत के साथ उत्तीर्ण होना सुनिश्चित करने पर केन्द्रित हो जाता है। हम यह मान सकते हैं कि सीसीई के तहत सीबीएसई न सिर्फ अन्तिम परीक्षाओं[10] के महत्व को कम करने का बल्कि विकेन्द्रीकरण करने का भी प्रयास कर रहा है। डाटा शीट/रिपोर्ट कार्ड को भरने वाली कई टिप्पणियों से यह पता लगता है कि बच्चे के विकास के लिए इनमें गैर तार्किक–गणितीय बुद्धि और भावनात्मक पहलुओं का समावेश कर लिया गया है। फिर भी इस प्रक्रिया में संज्ञानात्मक मानदण्डों को इस सोच के अनुसार ही तोड़–मरोड़ लिया जाता है कि 'परीक्षा उत्तीर्ण कर लेना आसान काम होना चाहिए'। इसके अतिरिक्त, हर मानदण्ड के निर्धारण में, जिसमें इन मानदण्डों को दिए जाने वाली भारिता (वेटेज़) भी शामिल है – बजाय इसके कि शिक्षकों को अपने स्वयं के मानदण्ड तय करने की स्वतंत्रता दी जाए – बोर्ड ने एक बार फिर विकेन्द्रीकरण की अवधारणा का मजाक बनाया है। सीसीई के लिए शिक्षकों की मार्गदर्शक पुस्तिका, इतने अधिक निर्देशों से भरी है कि यह 'एक–शिक्षक–को–हर–चीज–बताई–जाए' और 'शिक्षकों–को–कुछ–भी–पता–नहीं' की शैली में लिखी गई प्रतीत होती है। मूल्यांकन को जाँच सूचियों (चेक लिस्ट), सैंकड़ों टिप्पणियों, उपाख्यानात्मक टिप्पणियों और पता नहीं किस किस चीज के जरिए बहुत वैज्ञानिक और वस्तुनिष्ठ बनाने की चिन्ता में अस्पष्टता के तत्व को कम करके आँका गया है, जो कि समसामयिक प्रबन्धन संवाद में शायद एक घृणित वस्तु[11] है। किन्तु मुझे लगता है कि कई स्तरों पर सीखना अस्पष्ट होता है, और 'वैज्ञानिक' आँकड़ों को पैदा करने की आशंका सहज बोध के उस तत्व को दूर कर देती है, जो मुझे लगता है कि शिक्षण–अध्ययन में एक महत्वपूर्ण भूमिका अदा करता है। हालाँकि कुछ स्तरों पर उनका इरादा कक्षाओं में होने वाली पढ़ाई और चर्चाओं को समृद्ध और गहन बनाना रहा है, लेकिन ये उपाय शिक्षकों को आँकड़े इकट्ठा करने के इतने अधिक कागजी कामकाज में फँसा देते हैं कि उन्हें ऐसे शिक्षण के लिए समय नहीं मिल पाता। ऐसे उपाय एक तरफ तो शिक्षकों के स्वयं के विवेक को अवसर नहीं देते जो अन्यथा प्रत्येक छात्र से औपचारिक या अनौपचारिक रूप से बातचीत करने के बाद उसके सीखने की शैली के हिसाब से मूल्यांकन की एक उचित प्रक्रिया बना सकते थे।[12] लेकिन दूसरी तरफ, खासतौर से भारत की स्कूली कक्षाओं में अध्यापन की वास्तविकताओं – संसाधनों की सीमितता, शिक्षकों की उपलब्धता, शिक्षकों की क्षमता और उच्च प्रतिशत अंकों से उत्तीर्ण होना सुनिश्चित करने की बाध्यता – को देखते हुए इसके एक हास्यास्पद प्रहसन बन जाने का डर भी वास्तविक है।

अन्तिम विश्लेषण में, मूल्यांकन में शामिल परिवर्तनशील घटक अनेक हैं और जटिल हैं और प्रत्येक की अपनी कठिनाइयाँ हैं। मैं, न सिर्फ मूल्यांकन बल्कि सम्पूर्ण शिक्षण–अध्ययन प्रक्रिया की साख बहाल करने के लिए शिक्षक समुदाय पर भरोसा करने को तैयार हूँ। यह निश्चित तौर पर ऐसे शिक्षकों के दल पर निर्भर है जो पढ़ाने और छात्रों के साथ काम करने से प्यार करते हैं, और जिन्हें अपने पढ़ाने वाले विषयों से बेहद लगाव होता है, और साथ ही उनके स्कूलों पर भी निर्भर करता है जहाँ इन शिक्षकों पर उनके काम के लिए, और वे उसे किस प्रकार करते हैं, इस बात के लिए भरोसा किया जाता है। लेकिन अगर शिक्षकों पर भरोसा ही नहीं किया जाता तो हमें कभी सबसे अच्छे शिक्षक नहीं मिल पाएँगे और सीखने की प्रक्रिया अपने सभी घटकों के साथ इसका नुकसान भुगतती रहेगी और यह एक तमाशे और त्रासदी (मार्क्स से क्षमा माँगते हुए) के रूप में चलती रहेगी।

सन्दर्भ टिप्पणियाँ

1. 'असफल नागरिकता' के अधिक उदाहरणों के लिए कांति बाजपेयी का द टाइम्स ऑफ़ इण्डिया में 29 मई 2010 को प्रकाशित लेख 'द मिडिल एण्ड अदर क्लासेज़' देखें।

2. पाठ्यक्रम और दिशा निर्देशों पर सिर्फ एक बार दृष्टि डालने से यह स्पष्ट हो जाएगा कि टीएनएमबी और आईसीएसई परीक्षा के प्रश्नपत्र बनाने पर किस प्रकार की पाबन्दियाँ लागू करते हैं। http://www.cisce.org/data/Syllabus%20for%20ICSE%202011/history.pdf और http://www.tn.gov.in/matricsyllabus/blueprint/matric_QandB.pdf पेज 49 देखिए।

3. http://cbse.nic.in/ पर सामाजिक विज्ञान के लिए 'नमूना प्रश्न पत्र और मूल्यांकन योजना' वाला खण्ड देखिए (अकादमिक वर्ष 2010–2011 के लिए इसे कुछ हद तक बदला गया है)

4. वास्तव में कोई बच्चा कक्षा के अन्दर या बाहर जो कुछ भी करता है उसकी जाँच होती है। दिए गए दिशा निर्देशों से ऐसा समझ में आता है कि गृहकार्य और कक्षा–कार्य का भी मूल्यांकन किया जाना है। एक स्तर पर मुझे लगता है कि ऐसा करना अपरिहार्य हो जाता है, क्योंकि और किस तरह कोई किसी छात्र के गृह कार्य और कक्षा कार्य की उपलब्धि का लगातार मूल्यांकन करेगा जैसा कि नई व्यवस्था माँग करती है? इस अर्थ में यह उत्तीर्ण होने के प्रतिशतों को बढ़ाए जाने के सीबीएसई के निहित इरादे के विपरीत लगता है। इस सन्दर्भ में यह समाचार रिपोर्ट देखें: http://timesofindia.indiatimes.com/city/delhi/CBSE-sounds-warning-on-arbitrary-use-of-CCE/articleshow/5587256.cms (द टाइम्स ऑफ इण्डिया, फरवरी 18/19, 2010 नई दिल्ली संस्करण)

5. सीबीएसई के अध्यक्ष द्वारा 20 सितम्बर 2009 को सभी सीबीएसई स्कूलों को भेजे गए परिपत्र में सीसीई को लागू करने के लिए दिए गए पहले दो कारण थे : ''तनाव और चिन्ता कम करना'' और ''छात्रों के स्कूलों को बीच में छोड़ने की दर को कम करना''। http://cbse.nic.in/circulars/cir39-2009.pdf पर परिपत्र 39 देखें। दूसरे, जहाँ तक इतिहास और राजनीति की बात है, एनसीईआरटी की पुस्तकें इतिहास और सामयिक राजनीति की बहुत स्वस्थ समझ की वकालत करती हैं। कई शिक्षकों की इन सीमाओं को देखते हुए, कि जब वे स्वयं छात्र थे तब उन्होंने इतिहास को सरलीकृत और राजनैतिक आख्यान के दृष्टिकोण से पढ़ा था, हमें इस बारे में शंका हो सकती है कि उनमें से कितने इन पाठों को सघन और बहुपरतीय ढंग से कैसे पढ़ा सकते हैं, जैसा कि उनसे अपेक्षित है। इस बारे में आगे अध्ययन करने के लिए आप मेरी वैबसाइट पर आमंत्रित हैं:

   http://www.historicalmind.com/2007/07/new-ncert-history-text-books-critique.html इसमें हमारी कक्षाओं में एनसीईआरटी की पुस्तकों के साथ पेश आने वाली समस्याओं के बारे में आगे बातचीत की गई है।

6. अधिक अंकों और ऊँचे प्रतिशत, जहाँ '90 प्रतिशत को उत्कृष्ट की श्रेणी से घटा कर न्यूनतम योग्यता' कर दिया गया है, के प्रति हमारे जबर्दस्त लगाव के बारे में और सन्दर्भ सामग्री के लिए रोबिन्द्र साहा का मेरिट इन अ टाइम ऑफ एक्ट्रावेगेंट मार्किंग, एजुकेशन वर्ल्ड, मार्च 2008 देखें। 'मैंने टॉप किया, मैं प्रथम आया' की सोच को देखते हुए, ग्रेड चाहे वे सांकेतिक हों, निश्चित तौर पर अंकों और प्रतिशतों का स्थान लेने वाले हैं। हो सकता है कि ए से नीचे होने पर उच्चतर माध्यमिक स्कूल में जगह न मिले, इसलिए कम से कम ए तो हासिल करना ही होगा।

7. सुमित सरकार, अ न्यू काइंड ऑफ हिस्ट्री टैक्स्टबुक्स, द हिंदू, 17 अप्रैल 2006।

8. अगर अकादमिक वर्ष 2010–2011 में नए सीसीई मापदण्डों के हिसाब से तैयार नमूना प्रश्नपत्रों को देखें जिनमें बहुवैकल्पिक प्रश्नों को पहली बार शामिल किया गया है तो प्रश्नों का लहजा और स्वरूप ऐसे नहीं लगते जो छात्रों से विश्लेषणात्मक और तार्किक कौशलों की माँग करते हों, जैसा कि दावा किया गया है। कई स्तरों पर परीक्षाओं का स्मरण करके दोहराने वाला स्वरूप वैसा ही है जैसा कि टीएनएमबी और आईसीएसई में। देखें http://www.cbse.nic.in/cce/index.html

9. उमा माहेश्वरी और सैली वर्गीज़, हिस्ट्री एण्ड सिविक्स, मैट्रीकुलेशन, तमिलनाडु टैक्स्टबुक कॉर्पोरेशन, चेन्नई, 2006; ज़ेवियर पिंटो, ई जी मैलय न्यू आईसीएसई, हिस्ट्री एण्ड सिविक्स, पार्ट 2ए नोएडा, 2010

10. कुछ लोग यह भी कह सकते हैं कि अब एक बड़ी परीक्षा के स्थान पर उसके जैसी कई, हालाँकि विभिन्न रूपों वाली परीक्षाएँ, हो गई हैं।

11. मैं यह भी मानता हूँ कि शिक्षा के 'प्रबन्धीकरण' का एक प्रयास किया जा रहा है जिसमें सभी आँकड़े स्प्रैडशीट पर हों और जिन्हें बाजार के हिसाब से बनाया जा सके। इसी प्रकार की राय के लिए देखें स्टीफ़न आल्टर, 'क्लास रूम शॉपिंग – ऑल द मैनेंजमेंट मंबो–जंबो कान्ट मेक एजुकेशन अ रिटेल प्रॉडक्ट', आउटलुक, 27 नवम्बर, 2006।

12. यह तर्क दिया जा सकता है कि शिक्षण और अध्ययन को सिर्फ ऐसा कौशल नहीं माना जा सकता जिसे पाठ योजनाओं, फ्लो चार्ट और चेक

लिस्ट के जरिए मापा जा सके। शिक्षण और अध्ययन एक व्यक्तिपरक अनुभव जैसा अधिक है। यहाँ कोई इस बात से इन्कार नहीं कर रहा है कि सीखे हुए ज्ञान को मापने और उसके मूल्यांकन की आवश्यकता है लेकिन इसके लिए मापदण्ड तय करने का काम स्वयं शिक्षकों पर ही छोड़ दिया जाना चाहिए। देखें http://www.historicalmind.com/2009/06/indian-exams-patently-fraudulent-and.html और http://www.historicalmind.com/2010/05/cbses-continuous-and-comprehensive.html

---

आर एस कृष्णा *पिछले 13 वर्षों से बंगलौर और उसके आसपास के स्कूलों में अध्यापन कर रहे हैं। वे हाल ही में तमिलनाडु के होसूर में टीवीएस एकेडमी चले गए हैं जहाँ वे शोध पर ध्यान केन्द्रित कर रहे हैं। अपने अध्यापन काल में उनका प्रमुख जोर इतिहास अध्यापन को प्रयोगमय और प्रासंगिक बनाने पर रहा है। कक्षाओं में अपने कार्य के आधार पर उन्होंने एक वेबसाइट http://www.historicalmind.com बनाई है जिसमें उन्होंने भारत के स्कूलों के सामने आने वाली प्रमुख चुनौतियों और मुद्दों पर अपने विचारों को भी शामिल किया है। उन्होंने हैदराबाद के केन्द्रीय विश्वविद्यालय से मॉडर्न इण्डियन हिस्ट्री में मास्टर्स और नई दिल्ली के जेएनयू से मॉडर्न इण्डियन हिस्ट्री में एम. फिल की उपाधियाँ हासिल की हैं। उनसे इस krishna@historicalmind.com ईमेल पते पर सम्पर्क किया जा सकता है।*